झुर्रियों वाला बच्चा

गोविंद उपाध्याय

झुर्रियों वाला बच्चा

जयंत बाबू की मृत्यु का समाचार मेरे लिए अप्रत्याशित नहीं था। मैं जानता था कि वह पके आम जैसे हैं और कभी भी टपक सकते थे। वैसे भी वो कोई मेरे रिश्तेदार या सगे संबंधी तो थे नहीं कि मैं उनकी चिंता करता। उनकी चिंता के लिए बहुत से लोग थे। वो एक भरे-पूरे परिवार के बुजुर्ग थे। पिछले सात-आठ महीने से मेरा उनसे किसी प्रकार का संपर्क भी नहीं रह गया था। इसके बावजूद मैंने उनके साथ कुछ सुखद व तनाव रहित क्षण बिताए थे जो हमेशा याद रहेंगे।

पाँच साल पहले बैंक में मेरी उनसे मुलाकात हुई थी। तब वे पेंशन लेने आए थे। मैं अपना नया खाता खुलवाने वहाँ गया था। उस समय यह शहर मेरे लिए बिलकुल अजनबी था। मैं अभी कुछ दिनों पहले ही यहाँ आया था। न मैं इस शहर को ठीक से जानता था और न यहाँ पर कोई मेरा परिचित था। हम दोनों बैंक के गैलरी में बैठे थे। वह सत्तर की उम्र पार कर चुके थे। उनके गोरे चेहरे पर झुर्रियों का मकड़जाल था और मोटे बाई फोकल चश्मे के भीतर से झाँकती हुई बच्चों जैसी चंचल आँखें थीं। वह पाँच फुट से भी छोटे होंगे। दुबले पतले... आगे की तरफ थोड़ा झुका हुआ कंधा...। सफेद खद्दर की ब्राउन लाइनिंग वाली कलफ लगी कमीज और गहरी काले रंग की पतलून पहने हुए थे। उनके गोद में छोटा सा लाल रंग का रैक्सीन का बैग रखा हुआ था। वह पिछले पाँच मिनट में मुझे दो बार देखकर मुस्करा चुके थे।

'हैलो जेंटिलमैन... मैं जयंत... रिटायर प्रिंसिपल हूँ। पिछले पच्चीस वर्षों से इस बैंक का ग्राहक हूँ और दस साल से पेंशन लेने हर महीने की पंद्रह तारीख को यहाँ आता हूँ। यदि पंद्रह को अवकाश हुआ तो अगले कार्य समय में...।' आखिरकार उन्होंने मौन तोड़ कर एक संवाद की शुरुआत कर दी। मैं मुस्कराया और बताया कि मैं अमित हूँ... और इस शहर में आए मुझे मात्र पच्चीस दिन हुए हैं। मैं एक अखबार में काम करता हूँ। मैं यहाँ अपना खाता खुलवाने आया हूँ। अपने दफ्तर के एक साथी का इंतजार कर रहा हूँ। उसका यहाँ खाता है। वह मुझे इंट्रोड्यूज करेगा।

उन्होंने तत्काल ही मुझे इंट्रोड्यूज करने का आफर दिया, 'चलिए आप कब तक उनका इंतजार करेंगे। मैं इंट्रोड्यूज कर देता हूँ।'

मुझे भला क्या आपत्ति हो सकती थी। मैंने फार्म उनकी तरफ बढ़ा दिया। कुछ ही मिनट में मेरा अकाउंट खुल गया। मैं अपने साथी को काम हो जाने की सूचना दी और उन्हें धन्यवाद दिया।

मैं जब तक उन्हें भूलता वह मेरे अखबार के दफ्तर आ गए। 'हैलो जेंटिलमैन मुझे पहचाना।' उनके चेहरे पर वही मुस्कराहट चिपकी हुई थी।

'अरे अंकल आइए...।' मैं उनका गरमजोशी से स्वागत किया।

'डोंट काल मी अंकल... वी आर फ्रेंड्स...' और वो खिलखिला दिए। मैं भी हँसने में उनका साथ दिया। मैंने उनके लिए चाय मँगवाई। बिना शक्कर वाली। चाय में उन्होंने अपने साथ लाए रेक्सीन के बैग से शुगर फ्री की गोली निकाल कर डाल दिया। अब वह चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे।

'तुम अखबार में क्या देखते हो**?**' उन्होंने बातों का सिलसिला आगे बढ़ाया।

'प्रादेशिक समाचार**...**।'

'अखबार की दुनिया भी कितनी रोमांचक होती है। मैं भी कभी पत्रकार बनना चाहता था। लेकिन शिक्षक बन गया। आदमी जो करना चाहता है, वह कर नहीं पाता है और जिसके बारे में वह सोचता तक नहीं वह खुद-ब-खुद उसकी जिंदगी में चस्पाँ होता जाता है।' धीरे-धीरे उनकी आँखों में उदासी तैरने लगी थी।

हमारे बीच उम्र का एक लंबा फासला था। उन्होंने जिंदगी के लंबे सफर में कई उतार-चढ़ाव देखे थे। मैं उनके सामने बिल्कुल बौना था। इसका मुझे एहसास था। मगर वो हमेशा मुझसे मित्रों जैसा व्यवहार करते।

जयंत बाबू मुझसे कहीं भी मिल जाते। पार्क में, माल में... सिनेमा हाल में... अपनी उसी सदाबहार मुद्रा में। फिर वह पिछली तमाम घटनाओं को छोटे बच्चे जैसे उत्साह से सुनाते। हम पार्क में बैठे होते। वह बच्चों को पतंग उड़ाते देखते तो उन्हें उत्साह से पेंच लड़ाने का गुर बताने लगते। एक दिन तो उन्होंने हद ही कर दी। कटी पतंग को लूटने के लिए एक झटके से उठ खड़े हुए। यदि मैं हाथ नहीं पकड़ता तो शायद बच्चों के साथ वह भी दौड़ पड़ते - 'आप नहीं समझेंगे अमित... पतंग लूटने का अपना ही मजा है।' फिर एक निर्दोष मुस्कराहट...।

रास्ते चलते चाट वाले की दुकान पर किसी बच्चे की तरह तुनक जाते - 'यार अमित... चलो गोल गप्पे खाया जाए...।' और जब तक मैं कुछ बोलता... उनके हाथ में दोना होता और होंठो पर वही निर्दोष मुस्कराहट...।

मुझे आश्चर्य होता। इस उम्र में एक अजीब सी उदासी आदमी के इर्द-गिर्द पसरी रहती है। इस दुनिया से उसका मोह भंग होने लगता है। अपने जमाने के 'बेताल' को कंधे पर ढोता नई पीढ़ी को कोसता रहता है। लेकिन जयंत बाबू इन सबसे मुक्त थे। उनसे बात करते समय मुझे कभी यह लगा नहीं कि मैं उनसे उम्र में बहुत छोटा हूँ। वह जब भी मिलते अपने बारे में कुछ न कुछ जरूर बताते और धीरे-धीरे मैं उनके परिवार के तमाम सदस्यों के बारे में जानने लगा था...।

जयंत बाबू के पाँच बच्चे थे। बड़ा बेटा राजधानी में डाक्टर था। दूसरा बेटा एक बैंक में अधिकारी था। उसकी पोस्टिंग इस समय मध्य प्रदेश के किसी जिले में थी। बेटी और दामाद कनाडा में थे। तीसरा बेटा एक स्थानीय महाविद्यालय में प्रवक्ता था। सब कुछ व्यवस्थित... इसके बावजूद वह अकेले रहते थे। दो बेडरूम और एक बड़ा सा हाल बाहर से देखने में पुराने डिजाइन का मकान लगता था। किंतु अंदर से मकान आधुनिक ढंग से सुसज्जित था। एक नौकर था पचास-पचपन का अधेड़... वही उनकी देखभाल करता था। रंगी नाम था उसका। जब वह आठ-दस साल का था तो स्टेशन पर भीख माँगता था। उसका दुनिया में कोई नहीं था। जयंत बाबू उसे अपने साथ ले आए और वह उन्हीं का होकर रह गया। जयंत बाबू कहते - 'मैं दुनिया में सिर्फ रंगी से डरता हूँ। यदि इसने मुझे छोड़ दिया तो मैं कहीं का नहीं रहूँगा। यह मेरा पीर, भिश्ती... बावर्ची सब कुछ है।'

रंगी की बुद्धी थोड़ी मोटी जरूर थी परंतु जयंत बाबू के लिए उसके मन में अपार श्रद्धा थी।

'लक्ष्मी निवास'। ...हाँ! यही नाम था जयंत बाबू के घर का। क्रीम कलर के इस मकान के छज्जे पर मिस्त्री ने ही छज्जा बनाते समय ही इसका नाम लिख दिया था। काफी दिनों बाद में पता चला कि जयंत बाबू की पत्नी का नाम लक्ष्मी था।

स्टेशन से आते समय ओवरब्रिज को क्रास करने के बाद पेट्रोल पंप और उसके सामने की गली में तीसरा मकान था लक्ष्मी भवन। बाउंड्री पर लोहे का ग्रिल वाला नक्काशी वाला फाटक...। अंदर घुसते ही करीने से सजे गमले, जिनमें गुलाब के फूल और कुछ सजावटी क्रोटन के पौधे। मुझे पहली नजर में यह घर भा गया था।

मैं जब कभी उस रास्ते से गुजरता तो दस-पंद्रह मिनट उनके पास जरूर रुकता। प्रायः वो ड्राइंग रूम में बैठे कोई पुस्तक पढ़ते मिलते। तब वो एक लंबा सा गाउन पहने होते। चेहरे पर वही सदाबहार मुस्कराहट होती - 'अहा! अमित....!! आइए-आइए... कैसे हैं आप...।'

फिर कुछ खाने का आग्रह करते। नौकर तब तक ट्रे सामने रख देता। जिसमें अकसर छेने की मिठाई और सीजनल फल होते। वो चाहते कि मैं उनके पास बैठूँ, ढेर सारी बातें करूँ और उनकी बातें सुनूँ। पर मेरे पास समय का हमेशा अभाव होता। मुझे बस यह बात कचोटती रहती कि इतने काबिल बच्चों के पिता होने के बावजूद वह अकेले क्यों रहते हैं? क्या उनके बच्चे, उन्हें अपने पास नहीं रखना चाहते हैं या वो खुद बच्चों के पास नहीं रहना चाहते हैं? यह बात मैं उनसे पूछना चाहता था। पर मुझे लगता यह शिष्टाचार के खिलाफ है। उनकी निजी जिंदगी है। वो जैसे चाहें जिएँ, मैं कौन होता हूँ उनसे पूछने वाला। मैं उनके प्रवक्ता बेटे से भी इसी घर में मिला था। वह भी मुझसे उम्र में बड़े थे। बौद्धिकता उनके संपूर्ण व्यक्तित्व से झलकती थी। वह भी अपने पिता की तरह ही छोटे कद के गौरवर्णी और मृदुभाषी थे। उनकी बातों से यही लगा कि सप्ताहांत में एक बार वह अपने पिता से मिलने सपरिवार जरूर आते हैं। लेकिन फिर मेरे जेहन में वही सवाल कुलबुलाने लगता सब लोग इतने अच्छे हैं तो पिता को अपने साथ क्यों नहीं रखते?

मुझे बहुत दिन तक इस प्रश्न का इंतजार नहीं करना पड़ा। दिसंबर का अंतिम सप्ताह था। सुबह से बूँदा-बादी हो रही थी। दिन के ग्यारह बजने के बाद भी घना कोहरा छाया हुआ था। मैं रेलवे स्टेशन अपने एक मित्र को छोड़कर लौट रहा था। सोचा जयंत बाबू से मिल लिया जाए। वहाँ पहुँचा तो दूसरा तमाशा। जयंत बाबू के मकान के मुख्य द्वार पर एक नौजवान नशे में धुत दरवाजा खड़खड़ा रहा था। लोहे का दरवाजा कसकर बंद था। उसके धक्के से थोड़ी सी आवाज होती और उसके बाद वह नौजवान हाँफते हुए गाली देता - अबे खोल बुढ्ढे... दरवाजा खोल... वर्ना मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। मुझे मालुम है तू घर में ही छिपा है।'

उसकी आवाज कभी करुण हो जाती तो कभी उग्र। जयंत बाबू का मकान इस धुंध में भी अविचलित खड़ा था। उस पर इस युवक की आवाज का कोई असर नहीं था। वह

चींखते-चिल्लाते थक चुका था। मुझे वह दयनीय लग रहा था। मकान से थोड़ी दूर बाइक पर बैठे मैंने देखा कि युवक के नाक और आँख से पानी बह रहा था। मुँह से भी लार टपक रहा था। इतनी ठंड में भी वह मामूली से कमीज और पतलून पहने था। उसके कपड़े गंदे थे। अब वह निराश हो चुका था। शायद उसे मालूम हो चुका था कि यह गेट नहीं खुलने वाला है। उसने एक आखिरी प्रयास किया। लोहे गेट को पूरी ताकत से हिलाया और कुछ अपशब्द अपनी पूरी ताकत से हवा में उछाल दिए और धीरे-धीरे घिसटता हुआ धुंध में खो गया।

घर अभी भी वैसा ही शांत था। मेरे दफ्तर पहुँचने का समय हो गया था। अतः मैं चाहकर भी अब रुक नहीं सकता था। बाइक स्टार्ट किया और वहाँ से आगे बढ़ गया।

दो दिन मैं बहुत व्यस्त रहा। तीसरे दिन मुझे एक बार फिर उस चीखते युवक और जयंत बाबू की याद आई तो उत्सुकतावश उनके घर की तरफ चल दिया। रंगी ने दरवाजा खोला। जयंत बाबू घर पर नहीं थे। उसने मुझे बैठने का आग्रह किया - 'बहुत दिन बाद आए हो बाबू। बाबूजी आपको बहुत याद कर रहे थे। बैठो आते ही होंगे। बहुत देर से निकले हुए हैं।'

थोड़ी देर में गाजर का गरमा-गरम हलवा मेरे सामने था। सर्दी के मौसम में हलवे से उड़ती भाप और उसकी गंध ही मन को प्रफुल्लित कर गई। उस दिन काफी देर तक जयंत बाबू के इंतजार में रुका रहा। रंगी काफी बातूनी था। समय बिताने के लिए मैं उससे बात करने लगा और फिर जयंत बाबू से संबंधित तमाम अनसुलझे सवालों का जवाब मिल गया।

मैंने ही रंगी को बताया कि परसों आया था। उस समय एक नौजवान...।

रंगी ने खुद ही बताना शुरू कर दिया - 'अरे, उ त रोमी भइया थे। काल्हे जेल से छूटे थे। बाबूजी के सबसे छोटे लड़के। बाबूजी उनसे अपना सारा संबंध तोड़ चुके हैं। पता नहीं फिर काहे आ जाते हैं। उनही के मारे तो वह अपने परिवार से अलग इहाँ अकेले मकान में रहते हैं। प्रोफेसर बाबू के इहाँ जाएँगे तो उहाँ भी रोमी भइया पहुँच जाएँगे। उहाँ भी नाटक करेंगे। पढ़ने-लिखने वाले बच्चे हैं। उन पर बुरा असर पड़ेगा। इहाँ

दो-चार बार गरिया कर चले जाएँगे। फिर कवनों कांड करेंगे और छ महीना के लिए जेल के अंदर...।'

तो यह था जयंत बाबू का चौथा बेटा। तभी जहाँ और बेटों के बारे में जयंत बाबू बहुत उत्साह से बताया करते... चौथे बेटे की कभी भूल से भी चर्चा नहीं करते थे। उस शाम न जाने मन क्यों उदास बना रहा। मैं जयंत बाबू के घर से बिना मिले ही लौट आया था।

दस दिन बाद मिले होंगे जयंत बाबू। उन्होंने बंद गले का सूट पहन रखा था। सिर पर मंकी कैप को लपेट कर लगाया हुआ था। जिसके कारण उनका चेहरा खुला हुआ था। वही मुस्कराता हुआ सदाबहार चेहरा।

'और अमित कैसे हैं...? उस दिन बिना मुझसे मिले लौट आए? पाँच मिनट और रुकते तो हमारी मुलाकत हो जाती। मैं नून शो में पिक्चर देख रहा था।' वह बैठने के साथ ही उत्साह से बताने लगे थे।

कमरे में किसी महँगे स्प्रे की खुशबू फैलने लगी थी। मैंने एक गहरी साँस ली। ताकि मन का भ्रम दूर हो जाए - 'क्या बात है... बहुत महक रहे हैं?'

वह खिलखिला कर हँस दिए। उनकी खिलखिलाहट में युवाओं सी खनक थी। फिर वो मेरी तरफ झुकते हुए फुसफुसाकर बोले - 'अच्छी है न... किसी ने बहुत प्यार से गिफ्ट किया है।'

मैं रोमांचित था। उनके झुर्रियों वाले चेहरे पर शरम की लाली को उछले-कूदते देख कर...।

'किसने दिया है भाई...? वह भी इतना नशीला उपहार...?'

'वही जिसके साथ उस दिन मैं नून शो में पिक्चर देख रहा था। मैं अब अकेलेपन से उबने लगा हूँ। वह मेरे जीवन में बहार बन कर आई है। वह भी तो बेचारी अकेली है। मैं उसे चाहने लगा हूँ। मुझे विश्वास है कि आप भी पसंद करोंगे। मैं तो उसे लाइफ पार्टनर बनाने को सोच रहा हूँ।'

मैं रोमांचित था... उनकी बातें सुनकर। वह बिल्कुल नए-नए जवान हुए युवक जैसी बातें कर रहे थे।

जयंत बाबू चाहते थे कि मैं सुशीला से एक बार मिलूँ। मैं उनके आग्रह को टाल न सका। वह पचपन-साठ के बीच की दोहरे बदन की गौरवर्णी महिला था। हल्दी वाली पीली गोराई... उसके नाक-नक्श काफी तीखे थे। अपने समय में वह निस्संदेह बहुत सुंदर रही होगी। उसके बात-चीत का ढंग काफी शालीन था। दो साल पहले उसके पति का निधन हुआ था। वो किसी सरकारी विभाग से रिटायर हुए थे। सुशीला पेंशन लेने उसी बैंक में जाती थी, जिसमें जयंत बाबू पेंशन लेने जाते थे। वहीं उन दोनों की मुलाकात हुई थी।

सुशीला के दो बेटे थे। दोनों मिलकर रेडीमेड की एक छोटी सी दुकान चलाते थे। उन्हें इस रिश्ते से कोई आपत्ति नहीं थी। जयंत बाबू को आशा थी कि उनके बच्चों को भी इस विवाह के लिए कोई आपत्ति नहीं होगी। सब कुछ बहुत आसान दिख रहा था। जैसा उन्हें विश्वास था। उनके बेटों को भी कोई आपत्ति नहीं थी। साधारण ढंग से कोर्ट मैरिज होनी थी। मैं उस दिन का बेसब्री से इंतजार कर था।

पाँच बजे के बाद दफ्तर में व्यस्तता बढ़ जाती है। प्रादेशिक समाचारों का संकलन शुरू हो जाता है। तभी जयंत बाबू हाँफते हुए कमरे में प्रवेश किए। इस समय उनका आना मुझे असुविधाजनक लगा। काम का प्रेशर था। वह काफी उदास थे। मार्च का पहला सप्ताह था। ठंड तो नहीं थी, पर हवा में अभी भी शीतलता थी। इसके बावजूद जयंत बाबू के माथे पर पसीने की नन्हीं बूँदे झिलमिला रही थी...।

'यार लुटते-लुटते बच गया मैं...। वह जितनी मासूम दिखती थी... उतनी थी नहीं। आज मैंने उससे संबंध तोड़ दिया। ठीक है भाई तुम अपना रास्ता देखो और मैं अपना। हमें कोई जरूरत नहीं है तुम्हारी...। वह उत्तेजित थे और हाँफने लगे थे।

'आराम से सर...। क्या हो गया?' मैं उनकी तरफ पानी का गिलास बढ़ाते हुए बोला।

वह पानी के लिए इशारे से मनाकर दिए। कुछ देर तक आँखें बंद कर साँसों को नियंत्रित करते रहे। उनके चेहरे का तनाव पिघलने लगा था। हाँ! अब वह उत्तेजित नहीं

लग रहे थे। उन्होंने एक गहरी साँस खींची और शून्य में घूरते हुए बोले - 'यार अमित क्या बताऊँ... जमाना कितना खराब आ गया है। किसी पर भरोसा करना ठीक नहीं है। मैंने तो सोचा था कि हम दोनों अपना वैधव्य अकेले काट रहे हैं। एक साथ हो जाएँगे तो दोनों का अकेलापन दूर होगा... वह अपनी बहुओं से भी त्रस्त थी। अब दूसरी कहानी बता रही। जब सब कुछ फाइनल हो गया तो कहने लगी - यह मकान मेरे बेटों के नाम कर दो...। अपना बैंक बैलेंस मेरे नाम कर दो... अब बताओ चार दिन की जिंदगी शेष बची है। मैं यह अनर्थ भला क्यों करूँगा? अरे, तुम मुझसे शादी कर रही हो। तुम्हारा हक बनता है मुझ पर...। मेरे न रहने पर यह मकान तो पत्नी होने के नाते तुम्हारा हो ही जाता। अब तुमने पहले से ही इसे अपने बेटों के नाम कराने का दबाव बनाकर अपनी असली मंशा जाहिर कर दिया...। वो शायद मुझे अय्याश और लाचार बूढ़ा समझ रही थी। मैंने एक सिरे से उसकी सभी शर्तों को खारिज करते हुए विवाह को स्थगित कर दिया।'

मैं इसमें भला क्या बोलता...? जयंत बाबू का विवाह प्रकरण यहीं समाप्त हो गया। एक लंबे समय तक हम लोगों की मुलाकात नहीं हुई। हालाँकि उस समय तक मोबाइल आम हो चुका था। लेकिन उन्होंने इसकी जरूरत नहीं समझी थी। लैंड लाइन का फोन कभी उनके घर में था। किंतु बच्चों के जाने के साथ उन्होंने उसका कनेक्शन कटवा दिया था। उन्होंने मुझसे एक बार कहा भी था - 'मोबाइल और टेलीफोन मनुष्य की संवेदना की हत्या कर देते हैं और आदमी औपचारिक होता चला जाता है।'

इसके बावजूद उनके पास एक छोटी सी डायरी थी जिसमें तमाम लोगों के फोन नंबर दर्ज थे। मुझे नहीं लगता था कि वो इस डायरी को उपयोग में लाते होंगे। लेकिन मेरे यह सोच एक दिन गलत हो गई। बरसात की अभी शुरुआत ही थी। शहर की सड़कें कीचड़ में बदलने लगी थी। एक अजीब तरह की गंध में शहर डूबा रहता। ऐसे में कही आने-जाने की इच्छा नहीं होती। किंतु जाना मजबूरी थी। जयंत बाबू का फोन आया था - 'यार अमित कुछ देर के लिए दोपहर में समय निकालकर आ जाते तो अच्छा लगता।'

मैं जब घर पहुँचा तो अचंभित था। कोई आयोजन चल रहा था। काफी भीड़-भाड़ थी। तभी एक आराम कुर्सी पर शांत भाव से बैठे जयंत बाबू दिखाई दे गए। मेरे लिए सभी

अपरचित लोग थे। सिवाय उनके प्रोफेसर बेटे और नौकर रंगी के...। रंगी ने मुझे देख लिया था। वह मेरे पास आ गया। मैंने जिज्ञासावश इशारे से ही पूछा - क्या हो रहा है...?

वह फुसफुसाकर बोला - 'रोमी भइया मर गए। बाबूजी के छोटे बेटे... उन्हें का शांति पाठ हो रहा है।'

बाद में जयंत बाबू से ही पता चला कि रोमी की मौत नशे के ओवरडोज से हुई थी। हालाँकि उससे उन्होंने सारे संबंध तोड़ लिए थे। वो तो चाहते थे कि उसे लावारिश छोड़ दिया जाए। लेकिन बेटों के कहने पर उसका अंतिम संस्कार करना पड़ा। यह बताते हुए उनकी आवाज भारी हो गई थी - 'यार अमित... सच यार उसके मरने के साथ ही मैं पाप मुक्त हो गया...।'

वह अब काफी कमजोर लगने लगे थे। वह अपना ज्यादा समय घर में ही बिताते। पब्लिक प्लेस पर कम ही दिखाई देते। मैं जब भी स्टेशन जाता तो लक्ष्मी भवन भी हो लेता। फिर अचानक एक दिन लक्ष्मी भवन में ताला लग गया...। अब मैं जब भी उधर से जाता तो लोहे के फाटक पर एक बड़ा सा ताला लटका मिलता।

पास-पड़ोस से बस इतना ही पता चला कि जयंत बाबू बीमार चल रहे थे। एक दिन उनका प्रोफेसर बेटा उन्हें और नौकर को यहाँ से ले गया। मुझे प्रोफेसर साहब के घर का पता नहीं मालूम था। हाँ! यदि मैं प्रयास करता तो उनका पता जरूर मिल जाता। लेकिन जयंत बाबू मेरे व्यस्त जीवन में शायद बहुत ज्यादा महत्व नहीं रखते थे। धीरे-धीरे मैं उनको को भूलने लगा था। अब लक्ष्मी भवन की यादें धुँधली पड़ने लगी थी कि अचानक एक दिन मेरे पास फोन आया - अमित जी...! मैं प्रोफेसर विश्वबंधु... जयंत जी का बेटा। पिता जी नहीं रहे। उनकी डायरी से आपका फोन मिला है। चार बजे सरवन घाट पर उनका अंतिम संस्कार होना है। आपकी उपस्थिति प्रार्थनीय है।'

फोन डिसकनेक्ट हो चुका था। बोलने वाले ने मेरे उत्तर की प्रतिक्षा भी नहीं किया। मैं कुछ पल के लिए हतप्रभ सा फोन के चोंगे को देखता रहा और फिर सामने दीवार पर लटकी घड़ी की तरफ देखा। पौने तीन बज रहे थे। चार बजने में सवा घंटे शेष थे। मैं

कुर्सी से उठकर स्टैंड की तरफ चल पड़ा। यदि ट्रैफिक के जाम में नहीं फँसा तो भी घाट पर पहुँचने में आधे घंटे से ज्यादा का समय लगना था।